Legal Express: An International Journal of Law **ISSN 2394-465X**
Vol. VII, Issue-I March 2021

भारत में न्यायपालिका का महत्व: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रदीप सिंह*
डॉ. जी. के. शर्मा**

परिचय

न्यायपालिका देश की एक स्वतंत्र इकाई है। अतः वह एक ही सक्रिय राजनैतिक पक्षपात से मुक्त मानी जाती है। इससे यही अपेक्षा की जाती है कि वह निष्पक्ष भाव से संविधान का अर्थ प्रतिपादित करे। यह जिम्मेदारी पूर्ण कार्य बहुत कुछ न्यायाधीशों के चेतन मन पर निर्भर रहता है। किसी संत पुरुष की ही तरह न्यायाधीशों को भी काम क्रोध एवं लोभ जैसी विकृतियों से दूर रहना भी अनिवार्य है। किसी वैज्ञानिक की तरह ही एक न्यायाधीश का कार्य भी सत्य की खोज करना ही है। देखा जाये तो वर्तमान स्थिति में सत्य की खोज या अन्वेषण करना एक कठिन कार्य ही है। झूठे साक्ष्य एवं झूठे वातावरण के मध्य रह कर सत्य की खोज करना ही न्यायाधीशों का वास्तविक कार्य है। जिसके लिए एक विधिवेत्ता, कानूनविद होना जितना आवश्यक है उतना ही कानून के अनुसार न्याय करना भी मूल कर्तव्य हो जाता है।

संघीय शासन व्यवस्था तथा नागरिकों के मूल अधिकारों का संविधान में निहित होना भी न्यायालय की संवैधानिक व्याख्या की भूमिका को और भी महत्वपूर्ण बना देता है। न्यायालय से यह भी आशा की जाती है कि वह राजनैतिक वाद-विवादों से दूर रह कर विधायिका और कार्यपालिका केन्द्र व राज्य संबंध तथा नागरिकों के मूल अधिकारों से संबंधित सीमाओं को नियंत्रित करे।

न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था से भी कुछ हद तक वादों को सुलझाने में आसानी हो जाती है। न्यायालय संविधान लागू होने के बाद से ही जिम्मेदारी पूर्ण दायित्व का पालन करने लगे।

उच्चतम न्यायालय कई वर्षों तक आलोचना से दूर अपनी कार्यविधि का संचालन करता रहा। समयानुसार संसद द्वारा बनाई गई विधियों को संविधान के अनुकूल न पाने के कारण उच्चतम न्यायालय ने इन्हें रद्द भी किया। इन्हीं निर्णयों की वजह से कार्यपालिका ने उच्चतम न्यायालय को अपने प्रगतिशील मार्ग में बाधक माना। परिणामस्वरूप आलोचना का दौर प्रारंभ हुआ, आलोचनाओं का यह क्रम उस समय उग्र हो गया जब बैंक राष्ट्रीयकरण एवं प्रिवीपर्स से संबंधित कार्यपालिका द्वारा जारी आदेश को उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुरूप मानने से इंकार कर दिया।

समालोचकों ने न्यायालय को तृतीय सदन के रूप में देखा है जो कि एक मिथ्यापूर्ण धारणा है, न्यायालय को तो मात्र व्याख्या का अधिकार है, विधि निर्माण का नहीं। न्यायालय ने समय-समय पर स्वयं के निर्णयों को भी बदला है जो कि संविधान के प्रति अपनी सहमति एवं आस्था को व्यक्त करता है।

प्रजातांत्रिक संवैधानिक संघात्मक ढांचे में, संविधान की सर्वोच्चता तथा इसके संरक्षण में न्यायपालिका एवं विधायिका का संबंध एक महत्वपूर्ण विषय रहा है।

* शोधार्थी, विधि संस्थान, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, म.प्र.

** सहायक प्राध्यापक, विधि संस्थान, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर म.प्र.

न्यायपालिका का आकार

भारतीय न्यायपालिका का आकार शंकु आकृति का है जिसमें शिखर पर उच्चतम न्यायालय उसके नीचे राज्यों के उच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के नीचे जिला न्यायालय जो कि विभिन्न जिलों में स्थापित किये गये हैं। सिविल, दीवानी मामलों की सुनवाई के समय यह जिला न्यायाधीश और आपराधिक मामलों की सुनवाई के समय यह सत्र न्यायाधीश कहलाता है। जिला एवं सत्र न्यायालय के नीचे मुंसिफ न्यायालय होते है।

न्यायपालिका का महत्व

"न्याय विभाग के अभाव में एक सभ्य राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। कोई भी समाज विधान मण्डल के बिना रहता है यह बात समझ में आ सकती है, परंतु ऐसे किसी सभ्य राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती जिसमें न्यायपालिका अथवा न्यायाधिकरण की कोई व्यवस्था न हो।" **डॉ. गार्नर**

न्याय का वास्तविक अर्थ अन्याय की भावना के दुरूपयोग को रोकने के लिए या प्रतिकार करने की सक्रिय प्रक्रिया के रूप में लगाया जा सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि अन्याय को समाप्त करने की मानव की मूल प्रवृत्ति ही भावनाओं को न्याय के नाम पर उचित ठहराने के लिए हतोत्साहित करती है। समाज व राष्ट्र में अन्याय के प्रति जागरूकता मानवीय संबंधों की तत्कालीन व्यवस्था के संदर्भ में उत्पन्न होती है। अतः न्याय की प्रेरणा ऐसी परिस्थितियों को बदलने की प्रेरणा होती है। इस तरह न्यायिक सामाजिक अवधारणा ही है जिसकी जड़ें मनुष्य के जीवन में तथा समाज की गहराईयों में होती है। इसलिए कहा भी जाता है कि इंसाफ एक अमूर्त तथा गतिहीन अवधारणा नहीं बल्कि एक मूर्त एवं गतिशील अवधारणा है जिसे मानव के परिवर्तनशील सामाजिक संबंधों के रूप में ही समझा जा सकता है।

न्यायपालिका शासन का वह अंग है जो विधियों की व्याख्या करता है तथा इनकी उल्लंघन करने वाले को उचित दण्ड देता है। विधियों के गुण एवं अवगुण को परखना इसका कार्य नहीं है इसका कार्य विधियों का उचित पालन करवाना है। न्यायपालिका की व्याख्या करते हुए गिल क्राइस्ट ने कहा है "इसका अभिप्राय सरकार के उन पदाधिकारियों से है जिनका कार्य वर्तमान विधि को किसी अभियोग के समय लागू करना है विधि निर्माणकर्ता विधि निर्माण के समय उससे उत्पन्न होने वाली व्यवहारिक कठिनाईयों से परिचित नहीं होते, ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर विधि की व्याख्या करना न्यायाधीशों का ही कार्य होता है।"

न्यायपालिका का अस्तित्व वर्तमान समय के सभ्य राज्य की प्रथम आवश्यकता समझा जाता है और भारतीय व्यवस्था की तो एक प्रमुख विषेशता संघीय न्यायपालिका को प्राप्त महत्वपूर्ण स्थिति है। भारतीय संघीय न्यायालयों का गठन ही इस प्रकार किया गया है कि न केवल वह पूर्णतः सशक्त व स्वतंत्र है न केवल वह नागरिकों को मौलिक अधिकारों के पालन का भी आश्वासन देती है बल्कि राज्यों की स्वतंत्रता और स्वायत्तता की भी रक्षक है। किसी भी देश में वास्तविक स्वतंत्रता का सबसे सशक्त प्रहरी एक निष्पक्ष और सशक्त न्यायपालिका ही होती है।

स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका आधुनिक संविधानों का एक प्रमुख गुण है। डॉ. गार्नर ने लिखा है - "न्यायाधीशों में सत्यता और निर्णय देने की स्वतंत्रता न हो तो न्यायपालिका का सारा ढ़ांचा खोखला प्रतीत होगा और उस उंचे उद्देश्य की सिद्धि नहीं होगी जिसके लिए उसका निर्माण किया गया है।"

भारतीय संविधान की प्रस्तावना के अनुसार संविधान का सबसे पहला उद्देश्य न्याय प्रदान करना है यह घोषणा की गई, कि भारतीय गणराज्य सभी नागरिकों को न्याय प्रदान करेगा। यह न्याय सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक होगा। नागरिकों को न्याय प्रदान करने की दिशा में सबसे पहला महत्वपूर्ण कदम है एक

स्वतंत्र और सशक्त न्यायपालिका की व्यवस्था करना। भारत के संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्रता की एक सशक्त प्रहरी पवित्र और निष्पक्ष न्यायपालिका इस देश को दी है कि सर्वोच्च न्यायालय एक पवित्र और श्रेष्ठ संस्था की गरिमा के अनुरूप कार्य कर रहा है।

शक्ति पृथक्करण की अवधारणा

वर्तमान युग में शक्ति पृथक्करण की अवधारणा के परिणाम स्वरूप राज्य के तीनों अंगो में न्यायपालिका का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि व्यवस्थापिका या कार्यपालिका के महत्व की उपेक्षा या अनदेखी की जा रही है, निःसंदेह एक आदर्श राज्य के लिए व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका की उपयोगिता या उसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता फिर भी आधुनिक समीक्षकों की यह अवधारणा है कि किसी देश की राजनैतिक व्यवस्था तथा इस देश के प्रजातांत्रिक राजनैतिक ढांचे का इस आधार पर मूल्यांकन किया जाता है कि उस देश की राजनैतिक संरचना में न्यायपालिका का क्या स्थान है? तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों की सुरक्षा करने में उसकी क्या भूमिका है। आज विश्व के विकसित, विकासशील या अविकसित देशों में शायद ही ऐसा कोई देश होगा जहां न्यायपालिका न हो, फिर भी प्रजातांत्रिक ढांचे का मूल्यांकन करते समय संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रजातांत्रिक मूल्यों को जहां सर्वोच्च शिखर पर रखा जाता है वहीं दूसरी ओर सोवियत संघ के राजनैतिक व्यवस्था के ढांचे को प्रजातांत्रिक मूल्यों की कसौटी पर कसे जाने पर समीक्षकों द्वारा प्रश्न व्यापक दृष्टि से देखा जाता है जबकि दोनों देशों में नागरिकों के राजनीतिक, सांस्कृतिक विचारधारा संबंधी मूल्यों को छोड़कर राजनैतिक संरचना में कोई अधिक अंतर नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि सोवियत संघ की संवैधानिक व्यवस्था में न्यायपालिका को वह स्थान प्राप्त नहीं है जो सम्मान, गरिमा, प्रतिष्ठा संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायपालिका को प्राप्त है।

इसका वास्तविक कारण यह है कि कार्यपालिका तथा इसके क्रियाकलाप आज प्रजातांत्रिक युग में भी सामान्य जनता की पहुंच तथा समझ से बाहर है तथा भारत जैसे देश में तो ''कोई नृप होई, हमें का हानि'' पर सामान्य जनता का विश्वास है। इसी प्रकार व्यवस्थापिका की गहमा-गहमी निर्धारित अवधि पर एक आंधी के झोंके के समान आती है और किसी संवेदनशील मुद्दे को लेकर जनसंप्रभुता को एक निश्चित अवधि के लिए राजनैतिक दांव पेचों में व्यवसायिक खिलाड़ियों की झोली में डाल देती है जबकि न्यायपालिका की स्थिति इसके ठीक विपरीत जन-जन से संबंधित है। इसका संबंध जितना शासकों से है उतना शासितों से भी है। धनी, निर्धन, कुलीन, पिछड़े वर्ग, सामाजिक, असामाजिक तत्व सभी का किसी न किसी रूप में न्यायपालिका से संबंध है। यही वजह है कि मांटेस्क्यू ने शक्ति पृथक्करण के बाद भी आम जन के दृष्टिकोण से सबसे अधिक महत्व सरकार के न्यायिक अंग का ही रहा है।

यदि राजनैतिक चिंतन की पृष्ठभूमि का अवलोकन करें तो न्यायपालिका का महत्व न केवल आधुनिक युग में बल्कि प्राचीन समय में भी उतना ही रहा है जितना वर्तमान में है। राजनैतिक मनीषी प्लेटो ने अपनी राजनैतिक चिंतन में व्यवस्थापिका या कार्यपालिका की अपेक्षा ''न्याय'' पर सर्वाधिक जोर दिया भले ही यूनानी काल का न्याय व्यक्ति के जीवन का एक पक्ष न होकर सर्वांगीण रहा हो। भारतीय राजनैतिक चिंतन में कौटिल्य तथा मनु ने भी राजा तथा प्रजा के बीच संबंधों के लिए न्याय को अनिवार्य बताया। इसी प्रकार मध्यकाल में आधुनिक राजनैतिक चिंतन में किया। वेली ने भी नैतिकता तथा धर्म के संबंध में अपने विचार अभिव्यक्त कर न्याय की पुष्टि की।

न्यायपालिका व्यक्ति के अधिकारों एवं स्वतंत्रता की रक्षा करती है उसमें हस्तक्षेप से सुरक्षा प्रदान करती है। स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका आधुनिक संविधान का एक प्रमुख गुण है। यदि किसी राज्य में उचित और निष्पक्ष न्यायपालिका नहीं है तो अधिकारों की सुरक्षा खतरे में रहती है। रॉले के अनुसार "अधिकारों का निश्चय और इन पर निर्णय देने के लिए न्याय विभाग नितांत आवश्यक है।"

न्यायपालिका की दृष्टि में सब समान होते हैं छोटा और बड़ा, अमीर और गरीब, काले और गोरे सबके लिए न्याय एक होता है और अपने अपराध के अनुरूप ही दण्ड पाता है। यदि राष्ट्र में न्यायपालिका की व्यवस्था न हो तो अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। लोकतंत्र में न्यायपालिका का महत्व निम्न कारणों से है -

संविधान की रक्षा के लिए

संविधान की रक्षा करने का दायित्व भी न्यायपालिका पर होता है लेकिन न्यायपालिका संविधान की रक्षा का यह दायित्व उसी समय भलीभांति निभा सकती है जब वह स्वतंत्र और निष्पक्ष हो, स्वतंत्र न्यायपालिका संविधान की रक्षा का कार्य दो प्रकार से करती है। प्रथम वह संविधान की धाराओं की स्पष्ट व्याख्या करती है। दूसरा व्यवस्थापिका द्वारा पारित उन कानूनों को जो संविधान के विरूद्ध होते हैं तथा कार्यपालिका के वे कार्य जो संविधान का उल्लंघन करते हों, अवैध घोषित करके न्यायपालिका संविधान की रक्षा करती है।

संघात्मक व्यवस्था के लिए

संविधान के द्वारा भारत में एक संघात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना की गयी है जिसके अंतर्गत संविधान द्वारा ही संघीय और राज्य सरकार के बीच शक्ति विभाजन किया जाता है। न्यायपालिका इस शक्ति विभाजन की रक्षा करता है और संघीय या राज्य सरकारों को अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर कोई भी कार्य करने से रोक सकता है।

इसके अलावा संविधान द्वारा चाहे कितना ही अधिक स्पष्ट शक्ति विभाजन क्यों न किया जाये अनेक विषयों पर संघीय या राज्य सरकारों के बीच या राज्य सरकारों में ही परस्पर विवाद उत्पन्न हो सकता है जिसका निपटारा न्यायपालिका के द्वारा ही किया जा सकता है।

प्रजातंत्र की रक्षा के लिए

लोकतंत्र की रक्षा में स्वतंत्र न्यायपालिका का महत्वपूर्ण योगदान है। शासन को मर्यादा में रखने का कार्य एक स्वतंत्र न्यायपालिका द्वारा ही किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त स्वतंत्रता और समानता लोकतंत्रीय शासन के प्रतीक होते हैं तथा नागरिकों की स्वतंत्रता और कानून की दृष्टि से व्यक्तियों की समानता इन दो लक्ष्यों की प्राप्ति स्वतंत्र न्यायपालिका को "लोकतंत्र के प्राण" कहा जाता है।

निष्पक्ष न्याय के लिए

न्यायपालिका का सबसे प्रमुख कार्य कानूनों की व्याख्या करते हुए न्याय प्रदान करना होता है। न्यायपालिका यह कार्य तभी भलीभांति कर सकती है जबकि वह स्वतंत्र और निष्पक्ष है। वह व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के नियंत्रण तथा प्रभाव से पूर्णतः मुक्त हो, यदि न्यायाधीशों पर किसी भी प्रकार का दबाव या बाहरी नियंत्रण हुआ तो वे निष्पक्षता पूर्वक न्याय प्रदान नहीं करेंगे। ऐसी स्थिति में न्यायपालिका उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकेगी, जिसके लिए उसका निर्माण किया गया है।

नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए

नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा हेतु भी न्यायपालिका की स्वतंत्रता आवश्यक है। व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका दोनों ही अपनी सवेच्छाचारिता के कारण नागरिकों के अधिकारों का हनन कर सकती है या उस पर अनुचित नियंत्रण लगा सकती है। ऐसी दशा में एक स्वतंत्र न्यायपालिका ही व्यवस्थापिका से अनुचित कानूनों को तथा कार्यपालिका के कार्यों को अवैध घोषित करके नागरिकों के अधिकारों की रक्षा कर सकती है। शासन के कोई भी अंग या अन्य सत्ता नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करती है तो न्यायपालिका बंदी-प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण जैसी आवश्यकता हो वैसा आदेश जारी कर नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करती है नागरिक अधिकारों के संदर्भ में न्यायपालिका के महत्व को न्यायमूर्ति बोस ने अपने निर्णय में कहा था "यह हमारा कर्तव्य और विशेषाधिकार है कि जिन अधिकारों को मूलाधिकार नाम प्रदान किया गया है मूलभूत बने रहें और संसद कार्यपालिका स्वतंत्रताओं को नियंत्रित करने में संविधान द्वारा प्रदत्त सीमाओं का उल्लंघन न करें। हम भारतीय नागरिकों की रक्षा करने के लिए और यह देखने के लिए कि इन स्वतंत्रताओं को संसदीय व्यवस्थापन प्रशासनिक कृत्यों द्वारा अत्यधिक सीमित या समाप्त न कर दिया जाये।

सरकार के अन्य अंगों पर नियंत्रण हेतु

सरकार के अन्य अंगों व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका की स्वेच्छाचारिता तथा निरंकुशता पर स्वतंत्र न्यायपालिका ही प्रभावशाली नियंत्रण रख सकती है। न्यायपालिका व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों को शून्य घोषित कर कार्यपालिका के स्वेच्छाचारिता जैसे कार्यों पर अंकुश लगाकर दोनों अंगों की निरंकुशता पर नियंत्रण करती है।

न्याय की रक्षा के लिए

न्याय की रक्षा तथा उसकी व्यवस्था के लिए न्यायपालिका का स्वतंत्र होना आवश्यक है। व्यवस्थापिका कानून का निर्माण करती है। उसके उल्लंघन होने पर कार्यपालिका लोगों पर अभियोग लगाती है तथा न्यायपालिका उन पर निर्णय देती है। यदि अभियोग पर निर्णय देने वाली न्यायपालिका स्वतंत्र न होकर अभियोग लगाने वाली कार्यपालिका के प्रभाव व नियंत्रण में होगी तो न्याय के औचित्य पर सदा संदेह बना रहेगा। इसी संदेह को दूर करने तथा न्याय दिलाने के लिए न्यायपालिका की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

प्रगतिशील दृष्टिकोण के लिए

न्यायपालिका द्वारा दिये गये निर्णयों एवं उनके कार्यों के इतिहास का अध्ययन करने से भी स्पष्ट हो जाता है कि इसने रूढ़िवादी दृष्टिकोण का अन्त करके प्रगतिशील विचारों को जन्म दिया है। इसने संसद द्वारा ऐसे कानूनों को जो तत्कालीन परिस्थितियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक थे वैध घोषित करके उसे प्रोत्साहित किया है और आज संपूर्ण देश अपने न्यायपालिका से राजनीतिक एवं प्रशासनिक पक्षपात से उपर उठकर व्यवहार तथा कार्य करने की अपेक्षा करता है।

नागरिक अधिकारों की दृष्टि से स्वतंत्र न्यायपालिका अति आवश्यक है। इस बात को स्वीकार करते हुए फ्रांस अमेरिका, भारत, आयरलैण्ड आदि देशों द्वारा अपने संविधान में न केवल मौलिक अधिकारों को बल्कि इसके साथ ही साथ स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका की भी व्यवस्था की। जिससे ये अधिकार न केवल कागजों पर बने रहे बल्कि इन्हें प्रभावपूर्ण तरीके से लागू किया जा सके।

एक व्यवस्थित न्यायपालिका का अस्तित्व किसी राज्य के व्यवस्थित जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक होता है। किसी राज्य में कानूनों की कितनी ही अच्छी व्यवस्था क्यों न हो उन्हें कार्य रूप में परिणित करने के लिए जब तक एक पृथक निष्पक्ष तथा स्वतंत्र न्याय विभाग नहीं होता तब तक उसका पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया

जा सकता। न्यायपालिका के अभाव में किसी भी राज्य में ठीक तरह से न्याय नहीं हो सकता न ही कानून का पालन किया जा सकता है। वहां निरंकुशता या अराजकता छाई रहती है। फलस्वरूप राज्य बिखरने की स्थिति में आ जाता है। इसलिए कहा जाता है कि ''न्यायपालिका राज्य की आत्मा है, प्राण है।''

आधुनिक युग में न्यायपालिका का महत्व और भी बढ़ गया है क्योंकि अब वह विभाग केवल व्यक्तियों के पारस्परिक मुकदमों का ही निर्णय नहीं करता बल्कि उन विवादों का भी निर्णय करता है जो राज्य तथा व्यक्तियों अथवा राज्यों और राज्यों के मध्य उठ खडे होते हैं।

निष्कर्ष

न्यायपालिका द्वारा संविधान को परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल विकसित किया है। इसके अतिरिक्त न्यायपालिका संविधान का संरक्षक तथा मौलिक अधिकारों का जागरूक संरक्षक है। उसने व्यवस्थापिका के अतिक्रमण से कार्यपालिका के अधिकारों की रक्षा की है। वह संसद द्वारा निर्मित ऐसी प्रत्येक विधि को अवैध घोषित कर सकती है जो संविधान के विरूद्ध हो। अपनी इस शक्ति के द्वारा वह संविधान की प्रभुता और सर्वोच्चता की रक्षा करता है। जब कभी संविधान के किसी अनुच्छेद के संबंध में कोई विवाद उत्पन्न हो जाता है तो उसे इस संबंध में निर्णय देने का अधिकार होता है और इस संबंध में उसका निर्णय अंतिम और सर्वमान्य होता है। इस संबंध में श्री एम.सी.सीतलवाड़ ने अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है कि ''संविधान की अंतिम व्याख्या के रूप में चाहे वह मौलिक अधिकारों का क्षेत्र हो अथवा संघ और राज्यों के बीच उठने वाले प्रश्न एवं देश के समस्त कानूनों और प्रथाओं पर आधारित नियमों का क्षेत्र, राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक उन्नति के यंत्र स्वरूप, न्यायपालिका के प्रभाव पर बल देना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

लार्ड ब्राइस ने ठीक ही कहा है कि ''यदि न्याय का दीपक अंधकार से ढक जाये तो उससे उत्पन्न अंधकार का अनुमान लगाया जाना कठिन है।'' आगे कहा कि ''किसी की शक्तिशाली श्रेष्ठता जांचने के लिए उसकी न्याय व्यवस्था की निपुणता से बढ़कर और कोई अच्छी कसौटी नहीं है क्योंकि किसी और चीज से नागरिक की सुरक्षा और हितों पर इतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना उसके ज्ञान से कि वह एक निश्चित शीघ्र तथा अपक्षपाती न्याय शासन पर निर्भर रह सकता है।''

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. गार्नर - पोलिटिकल साइंस एण्ड गवर्नमेन्ट, पृ. 722
2. जस्टिस बोस - इन राम सिंह बनाम स्टेट ऑफ देहली एण्ड एनादर क्वायटेड फ्राम एम.जी. गुप्ता, मार्डन गवर्नमेन्ट थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस, पृ. 308
3. मुनरो डब्ल्यू.बी. - दि गवर्नमेन्ट ऑफ़ दि यूनाइटेड स्टेट, पृ. 571
4. डॉ. पाण्डेय. जे.एन. - भारत का संविधान, 2014
5. डॉ. जैन एम.पी. - भारतीय संवैधानिक विधि, 2016
6. कलेक्टेड लीगल पेपर्स, पृ. 295
7. हेगडे के.एस. - दि क्राइसिस इन इंडियन जुडिसरी, पृ. 75